E-ISSN: 2664-603X
P-ISSN: 2664-6021
Impact Factor (RJIF): 5.86
IJPSG 2024; 6(2): 405-411
www.journalofpoliticalscience.com
Received: 07-11-2024
Accepted: 11-12-2024

डॉ. सुनील कुमार पंडित
सहायक प्राध्यापक, राजनीति विज्ञान, एस. एम. कॉलेज, भागलपुर, टी. एम. बी. यु., भागलपुर, बिहार, भारत

Corresponding Author:
डॉ. सुनील कुमार पंडित
सहायक प्राध्यापक, राजनीति विज्ञान, एस. एम. कॉलेज, भागलपुर, टी. एम. बी. यु., भागलपुर, बिहार, भारत

एकात्म मानववाद बनाम पश्चिमी उदारवाद: एक तुलनात्मक अध्ययन

डॉ. सुनील कुमार पंडित

DOI: https://www.doi.org/10.33545/26646021.2024.v6.i2e.645

सारांश
20वीं सदी के उत्तरार्ध में भारत जब राजनीतिक स्वतंत्रता प्राप्त कर चुका था लेकिन सांस्कृतिक, आर्थिक और वैचारिक दृष्टि से एक उपयुक्त मार्गदर्शन की तलाश में था, तब पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने "एकात्म मानववाद" के रूप में एक स्वदेशी और सांस्कृतिक रूप से सुसंगत दर्शन प्रस्तुत किया। यह दर्शन न केवल राजनीतिक विचारधारा के रूप में उभरा, बल्कि एक ऐसी जीवन दृष्टि भी बना, जो भारतीय समाज की आत्मा, उसकी परंपराओं, मूल्यों, और ऐतिहासिक अनुभवों से गहराई से जुड़ा हुआ था। उपाध्याय जी का यह दर्शन उस समय और भी प्रासंगिक हो गया जब स्वतंत्र भारत पश्चिमी लोकतांत्रिक मॉडल्स, समाजवाद, साम्यवाद और पूंजीवाद के बीच अपनी पहचान बनाने का प्रयास कर रहा था। "एकात्म मानववाद" भारतीय तत्वज्ञान की मूल अवधारणाओं जैसे कि *ऋता*, *धर्म*, *पुरुषार्थ*, और *समत्व* पर आधारित है। यह व्यक्ति को केवल एक आर्थिक या भौतिक इकाई नहीं मानता, बल्कि उसे शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा के एक समन्वित स्वरूप के रूप में देखता है। इसके अनुसार, समाज कोई यांत्रिक संरचना नहीं है, बल्कि वह एक जैविक इकाई है, जिसमें सभी वर्ग, जातियाँ, क्षेत्र और संस्कृतियाँ एक दूसरे के साथ सह-अस्तित्व और समरसता में जुड़े हुए हैं। यह समग्र दृष्टिकोण "सर्वे भवन्तु सुखिनः" तथा "वसुधैव कुटुम्बकम्" जैसे शाश्वत भारतीय सिद्धांतों को व्यावहारिक जीवन में उतारने की प्रेरणा देता है। इसके विपरीत, *पश्चिमी उदारवाद*, जो कि मुख्यतः यूरोप में 17वीं और 18वीं शताब्दी के प्रबोधन युग से विकसित हुआ, व्यक्ति की स्वतंत्रता, निजी संपत्ति, संविदात्मक शासन और स्वतंत्र बाजार अर्थव्यवस्था की अवधारणाओं पर बल देता है। इसमें राज्य की भूमिका को न्यूनतम माना गया है और व्यक्ति के अधिकारों को सर्वोच्चता दी गई है। यह विचारधारा भले ही व्यक्तिगत स्वतंत्रता को बढ़ावा देती है, परंतु इसमें आध्यात्मिक उद्देश्य, सामाजिक उत्तरदायित्व, और सांस्कृतिक परंपराओं के लिए अपेक्षित संवेदनशीलता की कमी पाई जाती है। इसकी अत्यधिक व्यक्तिगतता और उपभोक्तावाद पर आधारित संरचना ने सामाजिक विघटन, आर्थिक असमानता और नैतिक पतन को भी जन्म दिया है।

भारत जैसे बहुसांस्कृतिक और बहुस्तरीय समाज के लिए पश्चिमी उदारवाद की सीमाएँ स्पष्ट हो जाती हैं। जहाँ एकात्म मानववाद जीवन के समस्त पहलुओं - सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और आत्मिक - के समन्वय की बात करता है, वहीं उदारवाद केवल व्यक्तिवादी और भौतिक प्रगति को ही प्राथमिकता देता है। यह अंतर विशेषतः ग्रामीण भारत, पारंपरिक कुटुंब व्यवस्था, और भारतीय जीवनशैली के संदर्भ में गहरा हो जाता है, जहाँ सामाजिक बंधन, सहअस्तित्व और नैतिक मूल्य आज भी केंद्रीय भूमिका निभाते हैं। इस शोध लेख का उद्देश्य इन्हीं दो प्रमुख वैचारिक धाराओं - एकात्म मानववाद और पश्चिमी उदारवाद - का तुलनात्मक एवं आलोचनात्मक विश्लेषण करना है, ताकि यह निर्धारित किया जा सके कि भारत जैसे सांस्कृतिक रूप से समृद्ध, परंतु सामाजिक-आर्थिक विषमताओं से ग्रस्त राष्ट्र के लिए कौन-सी विचारधारा अधिक व्यावहारिक, नैतिक और स्थायी विकास की आधारशिला बन सकती है। जब आज की वैश्विक व्यवस्था विभिन्न प्रकार के संकटों - जैसे आर्थिक असमानता, सांस्कृतिक क्षरण, नैतिक भ्रम और सामाजिक विघटन - से जूझ रही है, तब एकात्म मानववाद का समग्र, संतुलित और आध्यात्मिक दृष्टिकोण न केवल भारत बल्कि वैश्विक मानवता के लिए भी एक वैकल्पिक मार्ग प्रदान करता है। अतः यह अध्ययन केवल दो वैचारिक प्रतिमानों की तुलना भर नहीं है, बल्कि यह एक गंभीर विमर्श है कि भारत को अपनी मूल आत्मा के अनुरूप किस प्रकार का वैचारिक, सामाजिक और आर्थिक ढांचा अपनाना चाहिए जो उसे न केवल आत्मनिर्भर और समरस बनाए, बल्कि वैश्विक मंच पर भी एक सशक्त सांस्कृतिक पहचान दिला सके।

मूलशब्दः एकात्म मानववाद, पश्चिमी उदारवाद, सामाजिक समरसता, स्वदेशी चिंतन, भारतीय विचारधारा, तुलनात्मक अध्ययन।

प्रस्तावना
एकात्म मानववाद, पंडित दीनदयाल उपाध्याय द्वारा प्रतिपादित एक मौलिक और भारत की सांस्कृतिक परंपरा पर आधारित वैचारिक दर्शन है, जिसे उन्होंने 1965 में भारतीय जनसंघ के अधिवेशन में प्रस्तुत किया था। यह दर्शन पश्चिमी विचारधाराओं की सीमाओं और एकांगी दृष्टिकोण के विपरीत, भारतीय जीवन-दृष्टि पर आधारित एक समग्र मानव-दृष्टिकोण की स्थापना

करता है। इसकी मूल अवधारणा यह है कि मनुष्य केवल एक भौतिक या आर्थिक प्राणी नहीं है, बल्कि वह शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा - इन चारों का समन्वय है, और उसका विकास इन सभी आयामों में संतुलन के साथ होना चाहिए। एकात्म मानववाद की मूल अवधारणा इस विचार पर आधारित है कि मनुष्य केवल एक भौतिक सत्ता नहीं है, जिसे भोजन, वस्त्र, आवास और अन्य भौतिक सुविधाओं की पूर्ति मात्र से संतुष्टि मिल जाए। पंडित दीनदयाल उपाध्याय के अनुसार, भारतीय संस्कृति मनुष्य को एक *चैतन्य सत्ता* के रूप में देखती है, जो आत्मा, मन, बुद्धि और शरीर - इन चारों तत्वों से समन्वित होती है। इस दृष्टिकोण में आत्मा को सर्वोच्च स्थान प्राप्त है, क्योंकि वही मानव चेतना और मूल्यों का स्रोत है। उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा था कि "जब तक आत्मा उपेक्षित है, तब तक कोई भी व्यवस्था मानव कल्याणकारी नहीं हो सकती।" पश्चिमी भौतिकवादी दृष्टिकोण जहां व्यक्ति को केवल एक आर्थिक इकाई या उपभोक्ता मानता है, वहीं एकात्म मानववाद मनुष्य को उसकी पूर्णता में समझने का प्रयास करता है। इसमें यह माना जाता है कि मानसिक और बौद्धिक विकास, नैतिक मूल्य, आध्यात्मिक चेतना और सामाजिक उत्तरदायित्व - ये सभी मानव विकास के अनिवार्य पहलू हैं। अतः वास्तविक विकास वही है, जिसमें मनुष्य का शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक संतुलन, बौद्धिक प्रखरता और आत्मिक उन्नति - इन चारों स्तरों पर संतुलित और समरस प्रगति हो। इस समग्र दृष्टिकोण के बिना कोई भी सामाजिक, राजनीतिक या आर्थिक व्यवस्था दीर्घकालीन और स्थायी रूप से मानव जीवन को कल्याणकारी नहीं बना सकती। यही कारण है कि एकात्म मानववाद एक ऐसी जीवनदृष्टि प्रस्तुत करता है, जो मानव को उसकी पूर्ण मानवता के साथ स्वीकार करता है और उसके सर्वांगीण विकास की संकल्पना करता है। [1]

पंडित दीनदयाल उपाध्याय के एकात्म मानववाद में *राष्ट्र* की परिकल्पना केवल एक भौगोलिक या राजनीतिक इकाई तक सीमित नहीं है, बल्कि उसे एक जीवंत और सजीव *सांस्कृतिक चेतना* के रूप में देखा गया है। इस दृष्टिकोण में राष्ट्र कोई कृत्रिम व्यवस्था नहीं, बल्कि एक ऐसी *सांस्कृतिक सत्ता* है, जो इतिहास, परंपराओं, मूल्यों, भाषा, धर्म, आस्था, और आध्यात्मिक चेतना के गहरे स्रोतों से पोषित होती है। [2] उपाध्याय जी मानते थे कि जैसे किसी व्यक्ति की आत्मा होती है, वैसे ही राष्ट्र की भी एक आत्मा होती है, जिसे भारतीय परंपरा में *'राष्ट्रीय आत्मा'* या *'चेतना'* कहा गया है। भारतवर्ष को वे एक *मातृरूप राष्ट्र* के रूप में चित्रित करते हैं, जिसके प्रत्येक नागरिक उसके शरीर के विभिन्न अंगों के समान हैं - परस्पर जुड़े हुए, एक-दूसरे पर आश्रित, और एक साझा ध्येय की ओर अग्रसर। इस प्रकार, एकात्म मानववाद व्यक्ति और राष्ट्र के बीच *विरोध नहीं, पूरकता* का सिद्धांत प्रतिपादित करता है। यह दृष्टिकोण राष्ट्रवाद को संकीर्ण जातीय, नस्लीय या भाषाई पहचान के रूप में नहीं देखता, बल्कि उसे *सांस्कृतिक राष्ट्रवाद* की व्यापक भावना से जोड़ता है, जिसमें विविधताओं में एकता, सहिष्णुता, सह-अस्तित्व और आध्यात्मिक उन्नति को प्राथमिकता दी जाती है। इस विचारधारा के अनुसार, यदि कोई राजनीतिक या आर्थिक व्यवस्था राष्ट्र की सांस्कृतिक चेतना से कट जाती है, तो वह केवल खोखले ढांचे की तरह रह जाती है। इसलिए, राष्ट्र का विकास तभी सार्थक माना जा सकता है जब वह अपनी संस्कृति, परंपराओं और आध्यात्मिक मूल्यों के साथ गहराई से जुड़ा हो। यह विचारधारा आधुनिक भारत में ऐसे राष्ट्रवाद की कल्पना प्रस्तुत करती है जो समावेशी, सहिष्णु और आध्यात्मिक रूप से प्रेरित हो, और जो भारत की हजारों वर्षों पुरानी सांस्कृतिक विरासत से सीधा जुड़ाव रखता हो। [3]

एकात्म मानववाद की प्रमुख विशेषताओं में से एक है *कर्तव्य-प्रधान जीवन दृष्टि*। पंडित दीनदयाल उपाध्याय का मानना था कि समाज और राष्ट्र का स्थायी कल्याण केवल *अधिकारों की माँग* से नहीं, बल्कि *कर्तव्यों के पालन* से संभव है। उनका स्पष्ट दृष्टिकोण था कि यदि हर व्यक्ति अपने *कर्तव्यों* का ईमानदारी से निर्वहन करे, तो *अधिकार* स्वतः मिलेंगे और संतुलन बना रहेगा। यह विचार पश्चिमी उदारवाद की उस प्रवृत्ति से भिन्न है जहाँ *अधिकारों* पर अत्यधिक बल दिया जाता है। भारतीय परंपरा में यह दृष्टिकोण *"स्वधर्म"* की संकल्पना से जुड़ा हुआ है, जहाँ प्रत्येक व्यक्ति की भूमिका और उसका कर्तव्य समाज के प्रति नैतिक रूप से निर्धारित है। गीता में भगवान श्रीकृष्ण का उपदेश - *"स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः"* - इस बात की पुष्टि करता है कि व्यक्ति का अपना धर्म (कर्तव्य) ही श्रेष्ठ है। [4] उपाध्याय जी इसी विचार को आधुनिक संदर्भों में प्रस्तुत करते हैं, जहाँ वे मानते हैं कि *कर्तव्यपालन से ही अधिकारों की रक्षा* होती है। इसके साथ ही वे *लोकसंवाद* की प्रक्रिया को भी महत्वपूर्ण मानते हैं - अर्थात व्यक्ति का समाज से निरंतर संवाद, उत्तरदायित्व और सहभागिता। यह कर्तव्य-बोध व्यक्ति को केवल स्वयं तक सीमित नहीं रखता, बल्कि उसे समाज, राष्ट्र और सम्पूर्ण मानवता के प्रति उत्तरदायी बनाता है। इस दृष्टिकोण से, एकात्म मानववाद केवल राजनीतिक या सामाजिक सिद्धांत नहीं, बल्कि एक ऐसी नैतिक जीवन पद्धति प्रस्तुत करता है जो व्यक्ति को स्वार्थ से ऊपर उठाकर कर्तव्य की चेतना से प्रेरित करती है - जिससे *सामूहिक कल्याण* और *संतुलित सामाजिक व्यवस्था* की स्थापना संभव होती है। [5]

पंडित दीनदयाल उपाध्याय का *एकात्म मानववाद* समाज में समरसता और सामाजिक न्याय को अत्यंत महत्व देता है। यह विचारधारा भारतीय संस्कृति की उस मौलिक अवधारणा पर आधारित है, जिसमें समाज को विभिन्न वर्गों या जातियों में विभाजित कर देखने की बजाय *एक जीवंत सामाजिक इकाई* के रूप में देखा जाता है, जहाँ सभी अंग एक-दूसरे पर आश्रित और पूरक होते हैं - जैसे शरीर के विभिन्न अंग मिलकर शरीर को क्रियाशील बनाते हैं। इस दृष्टिकोण में *वर्ग-संघर्ष* या *जातीय द्वेष* के लिए कोई स्थान नहीं है। *एकात्म मानववाद* मार्क्सवादी संघर्ष के सिद्धांत का विरोध करते हुए, सहयोग और सामंजस्य पर आधारित सामाजिक व्यवस्था की वकालत करता है। इसके अनुसार - श्रमिक, व्यापारी, किसान, शिक्षक, प्रशासक - सभी समाज-रूपी शरीर के अनिवार्य अंग हैं,और इनका उद्देश्य व्यक्तिगत लाभ नहीं, बल्कि सामूहिक हित और *राष्ट्रीय विकास* होना चाहिए। इस विचारधारा की विशेषता यह है कि यह *दलितों*, *महिलाओं*, *आदिवासियों* और *वंचित समुदायों* के उत्थान की भी बात करती है, लेकिन किसी संघर्ष, विरोध या विद्रोह के माध्यम से नहीं, बल्कि *संवाद*, *सहयोग* और *पुनः एकीकरण* के रास्ते से। यह दृष्टिकोण मानता है कि सामाजिक न्याय केवल आरक्षण या राजनीतिक सशक्तिकरण से नहीं, बल्कि समाज की चेतना में परिवर्तन और समरसता की भावना के विकास से प्राप्त किया जा सकता है। एकात्म मानववाद में समरसता का तात्पर्य है - ऐसा समाज जहाँ भेदभाव नहीं, बल्कि *सह-अस्तित्व* और *सामूहिक दायित्वबोध* हो। यह केवल सामाजिक समता की बात नहीं करता, बल्कि *सांस्कृतिक एकता* और *आध्यात्मिक समरसता* की ओर भी संकेत करता है, जहाँ प्रत्येक व्यक्ति को अपनी गरिमा के साथ जीने का अवसर मिले और उसे समाज में सम्मानपूर्ण स्थान प्राप्त हो। [6]

पंडित दीनदयाल उपाध्याय द्वारा प्रतिपादित एकात्म मानववाद केवल सामाजिक या सांस्कृतिक विचारधारा नहीं, बल्कि एक समग्र आर्थिक दृष्टिकोण भी प्रस्तुत करता है, जो भारतीय समाज की प्रकृति, आवश्यकताओं और परंपराओं के अनुरूप है। यह विचारधारा पश्चिमी देशों की भांति केवल जीडीपी वृद्धि या औद्योगिक उत्पादन को विकास का मापदंड नहीं मानती, बल्कि मानव-केन्द्रित, सामाजिक कल्याण-प्रधान और पर्यावरण-संवेदनशील अर्थव्यवस्था की वकालत

करती है। इसके अनुसार भारत जैसे देश में विकास की प्रक्रिया ग्राम आधारित होनी चाहिए, जिसमें स्थानीय संसाधनों और लघु उद्योगों का प्रमुख स्थान हो। इससे न केवल आत्मनिर्भरता को बढ़ावा मिलेगा, बल्कि ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार भी सृजित होगा और शहरों की ओर पलायन पर भी नियंत्रण रहेगा। एकात्म मानववाद का आर्थिक मॉडल स्वदेशी और आत्मनिर्भरता पर आधारित है। इसके अनुसार आर्थिक नीति ऐसी होनी चाहिए जो बाहरी निर्भरता को कम करे और स्थानीय उत्पादों व संसाधनों के उपयोग को बढ़ावा दे। इस दर्शन में उपभोग की अंधी दौड़ के स्थान पर संयम और संतुलित जीवनशैली को प्राथमिकता दी गई है, जिससे संसाधनों का अनावश्यक दोहन न हो और समाज में आर्थिक असमानता भी न बढ़े। यह केवल उत्पादन और उपभोग की प्रक्रिया को ही नहीं देखता, बल्कि यह मानता है कि व्यक्ति का चारों स्तरों - शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आत्मिक - विकास होना चाहिए। एकात्म मानववाद पर्यावरण संरक्षण और सतत विकास की भी संकल्पना करता है। इसमें प्राकृतिक संसाधनों के दोहन के बजाय उनके सदुपयोग पर बल दिया गया है ताकि वर्तमान और भविष्य की पीढ़ियाँ दोनों लाभान्वित हो सकें। यह विचारधारा अर्थव्यवस्था के केंद्र में पूंजी या राज्य को नहीं, बल्कि मानव को रखती है। विकास का उद्देश्य केवल धन का सृजन नहीं, बल्कि व्यक्ति की गरिमा की रक्षा, सामाजिक न्याय की स्थापना और सांस्कृतिक समरसता का संरक्षण होना चाहिए। इस प्रकार एकात्म मानववाद न तो पूरी तरह पूंजीवादी है और न ही समाजवादी, बल्कि यह भारतीय परिस्थितियों पर आधारित एक ऐसा आर्थिक मॉडल प्रस्तुत करता है जो आत्मनिर्भरता, नैतिकता, संतुलन और समग्र विकास को प्राथमिकता देता है। [7]

वर्तमान वैश्विक परिदृश्य में जहाँ जलवायु परिवर्तन, मानसिक तनाव, सामाजिक विघटन और नैतिक पतन जैसी समस्याएं गहराती जा रही हैं, वहां एकात्म मानववाद एक संतुलित और टिकाऊ जीवनशैली की ओर मार्गदर्शन करता है। यह दर्शन मानव और प्रकृति के मध्य सामंजस्यपूर्ण सह-अस्तित्व को प्राथमिकता देता है, जिससे पर्यावरणीय असंतुलन को रोका जा सके। एकात्म मानववाद मानता है कि संसाधन सीमित हैं, अतः उनका विवेकपूर्ण और संयमित उपयोग ही मानव जाति के भविष्य को सुरक्षित रख सकता है। इसके अंतर्गत तकनीकी प्रगति का स्वागत है, परंतु उसे मानव मूल्यों, नैतिकता और सामाजिक जिम्मेदारियों से जोड़कर देखने का आग्रह किया गया है। यह विचारधारा उपभोगवाद के स्थान पर संतुलन, संयम और सेवा की भावना को प्रोत्साहित करती है, जिससे व्यक्ति और समाज दोनों मानसिक, सामाजिक और आत्मिक रूप से समृद्ध हो सकें। इस प्रकार एकात्म मानववाद केवल भारत के लिए नहीं, बल्कि संपूर्ण विश्व के लिए एक वैकल्पिक और व्यावहारिक समाधान प्रस्तुत करता है। [8]

एकात्म मानववाद केवल एक राजनीतिक या आर्थिक दर्शन नहीं, बल्कि यह भारत की आत्मा से उत्पन्न एक व्यापक वैचारिक पुनर्जागरण की उद्घोषणा है। यह विचारधारा भारत की सनातन संस्कृति, धर्म और सभ्यता की पुनर्स्थापना के साथ-साथ एक ऐसी चेतना को जागृत करने का प्रयास करती है, जो भारतीयों को अपनी सांस्कृतिक जड़ों से जोड़ते हुए वैश्विक आधुनिकता से समुचित संवाद की क्षमता प्रदान करे। एकात्म मानववाद पश्चिमी विचारधाराओं जैसे उदारवाद, मार्क्सवाद और पूंजीवाद की भारतीय समाज में सीमित उपयोगिता की आलोचना करता है, क्योंकि ये विचारधाराएँ भारतीय जनमानस की गहराई और सांस्कृतिक विविधता को आत्मसात नहीं कर पातीं। इसके विपरीत, यह देशज चिंतन, मौलिकता और आध्यात्मिकता को केंद्र में रखकर भारतीय समाज की समस्याओं के समाधान का मार्ग सुझाता है। यह दर्शन न केवल सांस्कृतिक स्वाभिमान को पुनर्जीवित करता है, बल्कि एक आत्मनिर्भर, आत्मविहित और सामूहिक चेतना से युक्त भारत के निर्माण का संकल्प भी प्रस्तुत करता है। एकात्म मानववाद भारतीय दर्शन, संस्कृति और आधुनिक विकास की आवश्यकताओं का समन्वयक दृष्टिकोण है, जो *मानव के सम्पूर्ण विकास, सामाजिक समरसता, राष्ट्र के सांस्कृतिक आत्मबोध और वैश्विक स्थायित्व* के बीच संतुलन स्थापित करता है। यह विचारधारा आज के संदर्भ में *'वैश्विक सोचें, भारतीय कार्य करें'* के सिद्धांत को साकार करती है। यह केवल एक वैचारिक अवधारणा नहीं, बल्कि भारत के पुनर्निर्माण की *प्रेरक और क्रियाशील* शक्ति है।

एकात्म मानववाद, पंडित दीनदयाल उपाध्याय द्वारा प्रतिपादित एक समग्र दृष्टिकोण है, जो मनुष्य के जीवन को केवल भौतिक आवश्यकताओं तक सीमित नहीं करता, बल्कि उसकी आत्मिक, मानसिक और बौद्धिक आवश्यकताओं को भी उतनी ही महत्ता देता है। इस विचारधारा के अनुसार, मनुष्य केवल शरीर नहीं है, बल्कि वह चैतन्य, मन और बुद्धि से युक्त एक जीवंत सत्ता है, जिसकी सभी स्तरों पर पूर्णता की आवश्यकता होती है। अतः राष्ट्र का विकास भी ऐसा होना चाहिए जो व्यक्ति के इन सभी स्तरों के विकास को सुनिश्चित करे। [9] एकात्म मानववाद व्यक्ति और समाज के बीच परस्पर सहयोग और संतुलन की भावना को प्राथमिकता देता है। यह न तो व्यक्तिवाद की अतिशयता को मान्यता देता है और न ही सामूहिकता की पूर्ण प्रधानता को स्वीकार करता है। इसके अनुसार, समाज एक जीवंत संस्था है, और व्यक्ति उसका अभिन्न अंग। अतः व्यक्ति की स्वतंत्रता का संरक्षण करते हुए उसे सामाजिक उत्तरदायित्व का बोध भी कराया जाना चाहिए। [10] एकात्म मानववाद भारतीय परंपरा के चार पुरुषार्थ - धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष - को जीवन की दिशा और संतुलन का आधार मानता है। इसमें धर्म जीवन का मार्गदर्शक है, अर्थ और काम उसकी आवश्यकताएँ हैं, और मोक्ष उसका चरम लक्ष्य है। इस प्रणाली में न तो केवल भौतिक सुख को प्राथमिकता दी जाती है, न ही केवल आत्मिक मुक्ति की बात होती है, बल्कि यह संतुलन, संयम और संतोष को जीवन के केंद्र में रखता है। [11]

एकात्म मानववाद समाज में समरसता, सह-अस्तित्व और सह-भाव की भावना को प्रोत्साहित करता है। यह जाति, वर्ग, धर्म या भाषा के आधार पर किसी भी प्रकार के विभाजन या संघर्ष को नकारता है। इसके अनुसार, समाज के विभिन्न घटक - श्रमिक, किसान, व्यापारी, शिक्षक, प्रशासक - एक शरीर के विभिन्न अंगों की तरह हैं जो परस्पर निर्भर हैं। सामाजिक न्याय का आधार संघर्ष नहीं, बल्कि संवाद, सहयोग और पुनः एकीकरण होना चाहिए। [12] एकात्म मानववाद एक स्वदेशी और आत्मनिर्भर अर्थनीति का पक्षधर है, जिसमें ग्राम आधारित विकास, लघु और कुटीर उद्योगों को प्राथमिकता दी गई है। इसमें उपभोग नहीं, बल्कि संयम, संतुलन और स्वावलंबन को महत्त्व दिया गया है। यह विचारधारा अनियंत्रित औद्योगीकरण और उपभोक्तावादी प्रवृत्तियों की आलोचना करते हुए, मानव-केंद्रित, पर्यावरण-संवेदनशील और टिकाऊ विकास मॉडल की आवश्यकता पर बल देती है। [13]

आज की दुनिया जलवायु परिवर्तन, मानसिक तनाव, सामाजिक विघटन, और नैतिक गिरावट जैसी गंभीर समस्याओं से जूझ रही है। एकात्म मानववाद इन समस्याओं के समाधान के लिए एक संतुलित, मूल्यनिष्ठ और टिकाऊ जीवनशैली का मार्ग प्रस्तुत करता है। यह मनुष्य और प्रकृति के बीच सह-अस्तित्व, सीमित संसाधनों के विवेकपूर्ण उपयोग और तकनीकी प्रगति के साथ मानवीय मूल्यों के सामंजस्य की वकालत करता है। [14] एकात्म मानववाद केवल राजनीतिक सिद्धांत नहीं, बल्कि भारतीय संस्कृति, परंपरा और सभ्यता के आत्मबोध का पुनर्जागरण है। यह भारतीयों को अपने सांस्कृतिक दृष्टिकोण के माध्यम से वैश्विक संवाद में भागीदारी की क्षमता देता है। यह विचारधारा पश्चिमी उदारवाद, पूंजीवाद

और मार्क्सवाद की सीमाओं को रेखांकित करते हुए, देशज और मौलिक चिंतन को प्राथमिकता देती है। पश्चिमी उदारवाद की नींव 17वीं-18वीं शताब्दी के यूरोपीय ज्ञानोदय युग में पड़ी, जिसमें व्यक्ति की स्वतंत्रता, निजी संपत्ति का अधिकार, विधिक समानता और लोकतांत्रिक शासन की अवधारणा को केंद्र में रखा गया। यह विचारधारा सामाजिक अनुबंध, पूंजीवाद, उपभोगवाद और व्यक्तिवाद पर आधारित है। हालांकि इसने कई देशों में मानवाधिकार, लोकतंत्र और आर्थिक विकास को बल दिया, लेकिन इसने सांस्कृतिक विविधता, आध्यात्मिक चेतना और सामाजिक समरसता को उपेक्षित किया। [15]

एकात्म मानववाद में व्यक्ति और समाज के संबंध को अत्यंत घनिष्ठ और जैविक माना गया है। पंडित दीनदयाल उपाध्याय के अनुसार, व्यक्ति समाज से अलग कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं है, बल्कि वह समाज का अविभाज्य अंग है। उन्होंने व्यक्ति और समाज के संबंध की तुलना शरीर और उसके अंगों से की है - जैसे हाथ, पैर, आंख, हृदय आदि मिलकर शरीर का निर्माण करते हैं और एक-दूसरे के सहयोग से कार्य करते हैं, उसी प्रकार समाज भी व्यक्तियों के समन्वित सहयोग से ही जीवित, गतिशील और पूर्ण बनता है। समाज की भलाई में ही व्यक्ति की भलाई निहित है और व्यक्ति का विकास समाज के सामूहिक हित से जुड़ा है। एकात्म मानववाद में यह स्पष्ट किया गया है कि यदि व्यक्ति केवल अपनी स्वतंत्रता और स्वार्थ की पूर्ति में लगा रहेगा, तो न केवल समाज का संतुलन बिगड़ेगा बल्कि अंततः वह व्यक्ति भी अपने उद्देश्य को प्राप्त नहीं कर सकेगा। [16] समाज और व्यक्ति के बीच सह-अस्तित्व, परस्पर सहयोग और नैतिक उत्तरदायित्व की भावना आवश्यक है। इसके विपरीत, पश्चिमी उदारवाद व्यक्ति को एक स्वतंत्र, आत्मनिर्भर और स्वायत्त इकाई मानता है, जो स्वयं के अधिकारों, इच्छाओं और हितों की पूर्ति को सर्वोच्च महत्व देता है। उदारवाद इस विचार पर आधारित है कि समाज का निर्माण स्वतंत्र व्यक्तियों के बीच सामाजिक अनुबंध से हुआ है और राज्य का उद्देश्य केवल उन व्यक्तियों के अधिकारों की रक्षा करना है। इस विचारधारा में व्यक्ति की स्वतंत्रता को सर्वोपरि रखा गया है, जबकि समाज और सांस्कृतिक उत्तरदायित्व को गौण माना गया है। इस प्रकार, एकात्म मानववाद और पश्चिमी उदारवाद के बीच व्यक्ति और समाज के संबंध की अवधारणा में मौलिक अंतर दिखाई देता है। एकात्म मानववाद व्यक्ति को समाज के अंग के रूप में देखता है, जबकि उदारवाद व्यक्ति को समाज से पृथक और प्राथमिक सत्ता के रूप में प्रस्तुत करता है। [17]

एकात्म मानववाद के चिंतन में अधिकार और कर्तव्य के बीच संतुलन को अत्यंत महत्वपूर्ण माना गया है। पंडित दीनदयाल उपाध्याय का मानना था कि समाज की स्थिरता और व्यक्ति के नैतिक उत्थान के लिए कर्तव्य को अधिकार से पहले रखा जाना चाहिए। उनका तर्क था कि जब प्रत्येक व्यक्ति अपने कर्तव्यों का निष्ठापूर्वक पालन करता है, तो स्वाभाविक रूप से दूसरे व्यक्तियों के अधिकार सुरक्षित हो जाते हैं। इसलिए, कर्तव्यनिष्ठ व्यक्ति ही समाज के प्रति उत्तरदायी रह सकता है और वही समाज में संतुलन और समरसता बनाए रखने में सक्षम होता है। [18] उपाध्याय यह भी स्पष्ट करते हैं कि केवल अधिकारों की बात करना व्यक्ति को स्वार्थी, भोगवादी और सामाजिक उत्तरदायित्वों से विमुख बना देता है। अधिकार तभी सार्थक और टिकाऊ हो सकते हैं जब वे कर्तव्यों से संयमित हों। उन्होंने भारतीय संस्कृति की परंपरा का स्मरण कराते हुए कहा कि यहाँ व्यक्ति को अपने धर्म (कर्तव्य) का पालन सर्वोपरि माना गया है। इसके विपरीत, पश्चिमी उदारवाद की विचारधारा अधिकार-केन्द्रित है। यह व्यक्ति की स्वतन्त्रता, इच्छा और सुख की प्राप्ति को सर्वोच्च मूल्य मानती है। [19] इसमें व्यक्ति के अधिकारों की रक्षा को राज्य और समाज का प्रमुख दायित्व माना गया है, जबकि कर्तव्यों पर अपेक्षाकृत कम बल दिया गया है। इस कारण से कई बार व्यक्ति केवल अपने अधिकारों की मांग करता है लेकिन समाज और राष्ट्र के प्रति अपने कर्तव्यों की अनदेखी करता है। इस प्रकार, एकात्म मानववाद अधिकारों और कर्तव्यों के बीच समन्वय की बात करता है, जबकि पश्चिमी उदारवाद अधिकारों को प्राथमिकता देता है, जिससे सामाजिक दायित्वों की भावना क्षीण हो जाती है। उपाध्याय का यह दृष्टिकोण भारतीय दर्शन की उस परंपरा से जुड़ा है जहाँ *कर्तव्य ही सर्वोपरि धर्म* माना गया है। [20]

एकात्म मानववाद में "धर्म" की अवधारणा को उसकी पारंपरिक भारतीय परिभाषा में प्रस्तुत किया गया है। पंडित दीनदयाल उपाध्याय के अनुसार, धर्म का अर्थ किसी पंथ, मज़हब या संप्रदाय से नहीं है, बल्कि यह उस शाश्वत सत्य, नैतिक आचरण, और जीवन संचालन के सिद्धांतों से है जो व्यक्ति, समाज, और सृष्टि की सुव्यवस्था को बनाए रखते हैं। यह धर्म कर्तव्यों, मर्यादाओं, और मूल्यपरक जीवन की आधारशिला है, जो व्यक्ति को उसकी भूमिका और उत्तरदायित्वों की पहचान कराता है। भारतीय परंपरा में धर्म का अभिप्राय सदाचार, सामाजिक संतुलन और सार्वभौमिक नैतिकता से है, न कि केवल धार्मिक अनुष्ठानों या मतों से। यही कारण है कि राजधर्म, पितृधर्म, सेवाधर्म, जैसे विविध रूपों में इसे सामाजिक और व्यक्तिगत कर्तव्यों से जोड़ा गया है। [21] उपाध्याय धर्म को जीवन का आत्मा मानते हैं, जो समाज को एकात्मता, सामूहिकता और सह-अस्तित्व की भावना से जोड़ता है। इसके विपरीत पश्चिमी उदारवाद धर्म को व्यक्तिगत आस्था तक सीमित रखने और राज्य से पृथक रखने की वकालत करता है, जिसे चर्चा और स्टेट का अलगाव कहा जाता है। यह विचारधारा सार्वजनिक जीवन और राजनीति में धर्म की भूमिका को न्यूनतम या निषिद्ध मानती है। परिणामस्वरूप, सामाजिक नैतिकता केवल विधानों पर आधारित होती है, और जीवन से आध्यात्मिकता तथा नैतिक मूल्यों का ह्रास होने लगता है। जब धर्म को केवल पंथ या विश्वास का विषय मान लिया जाता है, और उसे सार्वजनिक जीवन से अलग किया जाता है, तब सामाजिक व्यवस्था दिशाहीन और मूल्यहीन हो सकती है। एकात्म मानववाद इस खंडन को अस्वस्थ मानता है और भारतीय संस्कृति के अनुरूप धर्म को जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में नैतिक और आत्मिक मार्गदर्शक के रूप में स्थापित करता है। इस प्रकार, एकात्म मानववाद का "धर्म" व्यक्ति और समाज की नैतिक चेतना का मूल है, जबकि पश्चिमी उदारवाद में धर्म का स्थान केवल व्यक्तिगत आस्था तक सीमित रह जाता है, जिससे सार्वजनिक नैतिकता के स्तर पर एक शून्यता उत्पन्न होती है। [22]

एकात्म मानववाद में विकास को केवल आर्थिक या भौतिक उन्नति तक सीमित नहीं माना गया है, बल्कि इसे मानव जीवन के समग्र और संतुलित विकास के रूप में देखा गया है। पंडित दीनदयाल उपाध्याय के अनुसार, विकास का अर्थ है व्यक्ति के शारीरिक, बौद्धिक, मानसिक और आत्मिक सभी पक्षों का समान रूप से परिष्कार और उन्नयन। यह विचारधारा मानती है कि यदि विकास केवल भौतिक सुख-सुविधाओं या उत्पादन-उपभोग के इर्द-गिर्द सिमट जाए, तो वह मानवता को पूर्णता की ओर नहीं ले जाता, बल्कि उसे दिशाहीन और आत्मविहीन बना देता है। एकात्म मानववाद की यह सोच भारतीय दर्शन की उस परंपरा से जुड़ी है जिसमें 'धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष' को मानव जीवन के चार पुरुषार्थों के रूप में मान्यता दी गई है। इसमें आत्मिक उन्नति को सर्वोपरि स्थान दिया गया है, और विकास का अंतिम उद्देश्य लोकमंगल और आत्मकल्याण है। [23] इस दृष्टिकोण में व्यक्ति समाज से जुड़ा होता है, और उसका विकास सामाजिक चेतना, सेवा और सांस्कृतिक मूल्यों से प्रेरित होता है। इसके विपरीत, *पश्चिमी उदारवाद* में विकास की धारणा मुख्यतः आर्थिक वृद्धि, औद्योगीकरण,

निजी उपभोग, और सामग्रीवादी उपलब्धियों पर केंद्रित रहती है । वहाँ *सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी),*आय वृद्धि, और बाज़ार विस्तार को विकास का पैमाना माना जाता है । यह सोच व्यक्ति को उपभोक्ता और समाज को केवल उत्पादक-उपभोक्ता संबंधों में सीमित कर देती है, जिससे सामाजिक संबंधों में विघटन, प्रतिस्पर्धा, और अंततः आत्मिक शून्यता का जन्म होता है । इस एकांगी विकास ने आधुनिक समाज में मूल्यहीनता, मानवता, और पर्यावरण संकट को जन्म दिया है । जबकि एकात्म मानववाद इस बात पर ज़ोर देता है कि विकास में न केवल आर्थिक या तकनीकी पहलुओं को महत्व मिले, बल्कि नैतिक मूल्यों, सामाजिक उत्तरदायित्वों, और सांस्कृतिक आत्मबोध को भी समाहित किया जाए । [24]

पंडित दीनदयाल उपाध्याय द्वारा प्रतिपादित *एकात्म मानववाद* भारतीय सांस्कृतिक मूल्यों और सामाजिक संरचना पर आधारित एक ऐसी विचारधारा है, जिसमें व्यक्ति को केवल एक स्वतंत्र इकाई नहीं, बल्कि समाज के व्यापक ताने-बाने का अविभाज्य अंग माना गया है । इस दृष्टिकोण में *सामूहिक उत्तरदायित्व*, *सहभागिता* और *सामाजिक समरसता* को अत्यधिक महत्व दिया गया है । एकात्म मानववाद के अनुसार, व्यक्ति की स्वतंत्रता तब तक सार्थक है जब तक वह समाज के हित के साथ संतुलन बनाए रखे । समाज की उन्नति व्यक्ति के विकास से जुड़ी है, परंतु यह विकास व्यक्तिगत स्वार्थ और प्रतिस्पर्धा के आधार पर नहीं, बल्कि सहयोग, सेवा और कर्तव्यबोध पर आधारित होना चाहिए । इसके विपरीत, *पश्चिमी उदारवाद* व्यक्ति को सामाजिक व्यवस्था से पृथक एक स्वतंत्र इकाई के रूप में देखता है, जिसकी प्राथमिकता स्वयं की स्वतंत्रता और अधिकार होते हैं । [25] इस वैचारिक ढाँचे में व्यक्ति की आकांक्षाओं, इच्छाओं और उपलब्धियों को सर्वोच्च माना जाता है, जिससे सामाजिक उत्तरदायित्व गौण हो जाता है । इसके परिणामस्वरूप समाज में *वैयक्तिकता*, *स्पर्धा*, *असमानता* और *स्वार्थ* की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिलता है । उपाध्याय इस प्रवृत्ति को भारत जैसे सांस्कृतिक राष्ट्र के लिए अनुपयुक्त मानते हैं, क्योंकि भारतीय परंपरा 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना पर आधारित है, जहाँ समाज और व्यक्ति के हित को एक-दूसरे से अलग नहीं देखा जा सकता । एकात्म मानववाद और पश्चिमी उदारवाद के बीच का अंतर केवल वैचारिक या दार्शनिक स्तर पर नहीं है, बल्कि यह उनके सामाजिक, नैतिक और सांस्कृतिक प्रभावों में भी स्पष्ट रूप से परिलक्षित होता है । उपाध्याय मानते थे कि भारतीय समाज की आवश्यकताएँ और सांस्कृतिक आत्मा पश्चिमी मॉडल से भिन्न हैं । [26] अतः भारत को ऐसे *देशज मूल्यों* पर आधारित विचारों की आवश्यकता है, जो न केवल व्यक्ति की स्वतंत्रता को सम्मान दें, बल्कि उसे समाज के प्रति जिम्मेदार भी बनाएं । यही कारण है कि एकात्म मानववाद को उन्होंने भारत के लिए एक *उपयुक्त और सुसंतुलित मार्गदर्शक सिद्धांत* के रूप में प्रस्तुत किया । इस प्रकार, एकात्म मानववाद एक ऐसी विकास दिशा का प्रस्ताव करता है जो व्यक्ति, समाज और प्रकृति के बीच संतुलन बनाए रखे, और जीवन के सभी स्तरों पर समरसता, परिपूर्णता तथा आत्मसंतोष की ओर अग्रसर हो । यह केवल आगे बढ़ने की नहीं, बल्कि सही दिशा में बढ़ने की संकल्पना है ।

भारत एक बहुस्तरीय, बहुजातीय, बहुभाषीय और बहुधार्मिक राष्ट्र है, जिसकी सामाजिक संरचना अत्यंत जटिल है । यहाँ जाति, वर्ग, धर्म, भाषा, क्षेत्रीयता और परंपरा की विविधताओं के बावजूद सह-अस्तित्व और समरसता की भावना लंबे समय से बनी रही है । ऐसी सामाजिक-सांस्कृतिक बहुलता के बीच, किसी भी विचारधारा की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि वह भारतीय समाज की आत्मा, परंपरा और मूलभूत आवश्यकताओं के अनुरूप हो । पश्चिमी विचारधाराएँ, विशेषकर उदारवाद, इन पहलुओं को पूरी तरह नहीं समझ पातीं, जिससे वे भारतीय संदर्भ में अप्रासंगिक हो जाती हैं । पश्चिमी उदारवाद एक ऐसी विचारधारा है, जिसकी नींव व्यक्ति की स्वतंत्रता, भोगवाद, प्रतिस्पर्धा और आर्थिक उपलब्धियों पर आधारित है । यह व्यक्ति को समाज से अलग एक स्वतंत्र इकाई के रूप में देखती है और उसे उसके अधिकारों तक सीमित करती है । परिणामस्वरूप, समाज में आत्मकेंद्रितता, उपभोक्तावाद, नैतिक गिरावट और सामाजिक विघटन जैसी समस्याएँ उत्पन्न होती हैं । यह विचारधारा उन देशों में संभवतः कारगर रही हो जहाँ सामाजिक संरचना अपेक्षाकृत समरूप है, किंतु भारत जैसे गहराई से जुड़े पारिवारिक और सामूहिक समाज में यह असंतुलन को जन्म देती है । [27]

इसके विपरीत, पंडित दीनदयाल उपाध्याय द्वारा प्रतिपादित एकात्म मानववाद एक ऐसी विचारधारा है जो भारतीय परंपरा, संस्कृति और समाज की आत्मा के साथ गहराई से जुड़ी हुई है । यह व्यक्ति को एक सामाजिक प्राणी मानते हुए, उसे समाज, राष्ट्र और सृष्टि के साथ एकात्म भाव में देखता है । इसके अनुसार, विकास का उद्देश्य केवल भौतिक सुख-सुविधाएँ नहीं, बल्कि मानसिक, बौद्धिक और आत्मिक संतुलन भी है । यह दर्शन भारतीय जीवन मूल्य - जैसे धर्म, कर्तव्य, समरसता और संतुलन - को केंद्र में रखता है । ग्राम स्वराज की परिकल्पना एकात्म मानववाद के दर्शन में प्रमुख स्थान रखती है । महात्मा गांधी द्वारा प्रस्तावित यह विचार, स्थानीय स्वराज्य और आत्मनिर्भर ग्राम व्यवस्था को बढ़ावा देता है । भारत की अधिकांश जनसंख्या गाँवों में रहती है, जहाँ केंद्रीकृत शहरी नीतियाँ बहुत प्रभावी नहीं हो पातीं । ऐसे में ग्राम स्वराज, सामाजिक न्याय और आर्थिक स्वावलंबन को सुनिश्चित करने का एक व्यावहारिक मॉडल प्रस्तुत करता है । यह एकात्म मानववाद की उस सोच से मेल खाता है, जो सत्ता और संसाधनों के विकेंद्रीकरण की पक्षधर है । एकात्म मानववाद में स्वदेशी और आत्मनिर्भरता के सिद्धांतों को अत्यंत महत्व दिया गया है । [28] यह विचारधारा 'अपरिग्रह' (संपत्ति में संयम) और 'संतोष' (संतुलित उपभोग) जैसे भारतीय मूल्यों को आधार बनाकर, उपभोक्तावादी मानसिकता के विरुद्ध खड़ी होती है । यह स्वदेशी उत्पादन, स्थानीय संसाधनों के उपयोग और आत्मनिर्भरता को बढ़ावा देती है, जो भारत जैसे विकासशील देश में आर्थिक स्वतंत्रता और सांस्कृतिक अस्मिता की रक्षा के लिए आवश्यक है । यह दृष्टिकोण 'आत्मनिर्भर भारत' अभियान के भी मूल में निहित है । [29]

जहाँ पश्चिमी उदारवाद केवल अधिकारों की बात करता है, वहीं एकात्म मानववाद अधिकारों से पहले कर्तव्यों को रखता है । उपाध्याय का मानना था कि जब व्यक्ति अपने कर्तव्यों का पालन करता है, तभी वह समाज और राष्ट्र के प्रति उत्तरदायी बनता है । [30] यह दृष्टिकोण भारत की सांस्कृतिक परंपरा के अनुरूप है, जहाँ "धर्म" का अर्थ केवल धार्मिक अनुष्ठान नहीं, बल्कि कर्तव्य और आचार है । इस प्रकार, एकात्म मानववाद व्यक्ति को समाज और राष्ट्र के प्रति जिम्मेदार बनाकर सामूहिक कल्याण की दिशा में अग्रसर करता है । वर्तमान भारत नैतिक मूल्यों के गहराते संकट से गुजर रहा है । [31] राजनीतिक भ्रष्टाचार, सामाजिक हिंसा, पारिवारिक विघटन और आत्मघाती प्रवृत्तियाँ दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही हैं । ऐसी स्थिति में केवल कानून या नीतियाँ पर्याप्त नहीं हैं । इसके लिए आत्मिक जागृति और नैतिक पुनर्जागरण अनिवार्य है । एकात्म मानववाद इसी दिशा में एक सकारात्मक प्रयास है, जो व्यक्ति के भीतर से नैतिकता और अनुशासन का विकास करता है, न कि केवल बाह्य नियंत्रण से । एकात्म मानववाद विकास की उस धारणा को खारिज करता है जो केवल आर्थिक आंकड़ों और भौतिक उपलब्धियों पर आधारित हो । यह व्यक्ति के चारों आयामों - शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा - के समरस और संतुलित विकास की बात करता है । यह मानता है कि व्यक्ति का विकास तभी पूर्ण होगा जब वह आंतरिक रूप से भी परिपक्व हो ।

भारत जैसे देश, जहाँ जीवन का अंतिम उद्देश्य केवल सुख नहीं बल्कि मोक्ष भी है, वहाँ इस दर्शन की उपयोगिता और प्रासंगिकता अत्यंत अधिक है। [32]

आज जब भारत वैश्वीकरण, उपभोक्तावाद और सांस्कृतिक भ्रम की स्थितियों से जूझ रहा है, तब एकात्म मानववाद न केवल एक वैचारिक विकल्प, बल्कि एक प्राकृतिक और आवश्यक मार्गदर्शन के रूप में सामने आता है। यह भारतीय समाज की आवश्यकताओं, उसकी आत्मा और उसकी परंपरा के अनुरूप एक ऐसी विचारधारा है, जो सामाजिक समरसता, आर्थिक न्याय, नैतिक पुनर्जागरण और सांस्कृतिक स्वाभिमान को पुनर्स्थापित कर सकती है। अतः यह कहना उचित होगा कि एकात्म मानववाद भारतीय संदर्भ में न केवल प्रासंगिक है, बल्कि समय की माँग भी है। [33] एकात्म मानववाद, पंडित दीनदयाल उपाध्याय द्वारा प्रतिपादित, भारतीय सांस्कृतिक और दार्शनिक परंपरा पर आधारित एक समग्र विचारधारा है, जो व्यक्ति, समाज और प्रकृति के मध्य संतुलन को आवश्यक मानती है। यह विचारधारा मानव जीवन को केवल भौतिक अस्तित्व तक सीमित नहीं करती, बल्कि उसे आत्मिक, मानसिक और सामाजिक रूप में परिभाषित करती है। इसमें मानव के चारों आयाम - शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आत्मिक का समन्वय आवश्यक माना गया है, और जीवन को मूल्य-आधारित बनाकर समाज के कल्याण की ओर अग्रसर होने का आह्वान किया गया है। [34] एकात्म मानववाद भारतीय जीवन-दृष्टि के अनुरूप मानव-जीवन को केवल उपभोक्तावादी नहीं, बल्कि आध्यात्मिक, नैतिक और सामाजिक उत्तरदायित्व के साथ देखने का आग्रह करता है। हालांकि, इस विचारधारा की आलोचना इस आधार पर की जाती है कि इसमें व्यावहारिक नीतिगत स्पष्टता का अभाव है। जबकि यह सांस्कृतिक चेतना और नैतिक मूल्यों की सशक्त रूपरेखा प्रस्तुत करता है, परंतु यह यह नहीं दर्शाता कि आधुनिक जटिल राष्ट्र-राज्य में शासन, अर्थव्यवस्था, न्याय-व्यवस्था, शिक्षा, स्वास्थ्य और तकनीकी विकास जैसे क्षेत्रों में किस प्रकार नीति-निर्माण और कार्यान्वयन किया जाए। उदाहरणस्वरूप, शिक्षा को मूल्यपरक और कौशल-आधारित कैसे बनाया जाए, या स्वास्थ्य सेवाओं को आत्मनिर्भर कैसे किया जाए- इन प्रश्नों पर यह विचारधारा स्पष्ट दिशा नहीं देती। इसके चलते व्यवहारिक कार्यान्वयन में कई अस्पष्टताएँ उत्पन्न होती हैं, जिससे यह विचारधारा सैद्धांतिक रूप में प्रभावशाली होते हुए भी व्यावहारिक धरातल पर सीमित प्रतीत होती है। [35]

इसके विपरीत, पश्चिमी उदारवाद एक व्यवहारिक और संस्थागत ढाँचा प्रस्तुत करता है, जो आधुनिक लोकतांत्रिक व्यवस्था की नींव मानी जाती है। यह व्यक्ति की स्वतंत्रता, विधिक अधिकारों की सुरक्षा, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता और शासन की पारदर्शिता को प्राथमिकता देता है। पश्चिमी उदारवाद ने वैश्विक स्तर पर नागरिक अधिकारों, मानवाधिकारों और लोकतांत्रिक संस्थाओं के विकास में निर्णायक भूमिका निभाई है। यह शासन और प्रशासन को उत्तरदायी बनाता है और व्यक्ति के स्वतंत्र अस्तित्व को संरक्षित करता है।परंतु इसकी सबसे बड़ी सीमा यह है कि यह विचारधारा सामाजिक नैतिकता, आध्यात्मिकता और सामूहिक कर्तव्यों की उपेक्षा करती है। इसके फलस्वरूप उपभोक्तावाद, आत्म-केंद्रितता, सामाजिक असंवेदनशीलता और नैतिक पतन जैसी प्रवृत्तियाँ जन्म लेती हैं, जिससे सामाजिक असंतुलन उत्पन्न होता है। इस प्रकार, एक आलोचनात्मक तुलनात्मक दृष्टिकोण से देखा जाए तो यह स्पष्ट होता है कि एकात्म मानववाद और पश्चिमी उदारवाद दोनों में अपनी-अपनी विशिष्टताएँ और सीमाएँ हैं। एक ओर जहां एकात्म मानववाद सांस्कृतिक चेतना, सामाजिक समरसता और आत्मिक उन्नति की बात करता है, वहीं दूसरी ओर पश्चिमी उदारवाद व्यवहारिक नीतियों, संस्थागत ढाँचे और विधिक अधिकारों की सुरक्षा को प्राथमिकता देता है। एक विचारधारा जहाँ "कर्तव्य" की भावना को केंद्र में रखती है, वहीं दूसरी "अधिकारों" को। यह द्वैत आज के वैश्विक समाज के लिए एक अवसर प्रस्तुत करता है - दोनों के श्रेष्ठ तत्वों का समन्वय करके एक नई विचारधारा की रचना की जाए। [36]

इस समन्वय की दिशा में विचार करें तो स्पष्ट होता है कि आज का विश्व अनेक संकटों से जूझ रहा है - जैसे कि पर्यावरणीय असंतुलन, सांस्कृतिक विघटन, सामाजिक असमानता और नैतिक शून्यता। इन चुनौतियों से निपटने के लिए एक ऐसी विचारधारा की आवश्यकता है, जो एकात्म मानववाद की नैतिक चेतना और आध्यात्मिक मूल्यों को आत्मसात करे, और साथ ही पश्चिमी उदारवाद की लोकतांत्रिक संस्थागत संरचना, पारदर्शिता और नागरिक अधिकारों की गारंटी को भी बनाए रखे। एकात्म मानववाद से हमें सामाजिक उत्तरदायित्व, आध्यात्मिक अनुशासन और सामूहिक चेतना मिलती है, जबकि पश्चिमी उदारवाद हमें आधुनिक प्रशासनिक ढाँचा, विधिक सुरक्षा और लोकतांत्रिक मूल्यों की सीख देता है। इन दोनों का संतुलित संलयन ही वह 'भारतीय मॉडल' निर्मित कर सकता है, जो न केवल भारत के लिए, बल्कि समूचे विश्व के लिए एक न्यायपूर्ण, समरस और मूल्य-आधारित विकास का मार्गदर्शन कर सके।

इस तुलनात्मक अध्ययन से स्पष्ट होता है कि एकात्म मानववाद भारतीय समाज की गहन सांस्कृतिक और दार्शनिक जड़ों से जुड़ी एक समन्वयात्मक और समग्र विचारधारा है। यह विचारधारा न केवल सामाजिक न्याय, समता और नैतिक उत्थान पर बल देती है, बल्कि व्यक्ति, समाज और प्रकृति के बीच संतुलित और सामंजस्यपूर्ण संबंध की भी बात करती है। एकात्म मानववाद में सामाजिक कर्तव्य, आत्मिक चेतना और सांस्कृतिक मूल्यों को अत्यंत महत्व दिया गया है, जो भारतीय परंपराओं की विशिष्टता और विविधता को समझते हुए देश के सामूहिक हित को सर्वोपरि मानती है। यह व्यक्ति को केवल स्वतंत्र इकाई के रूप में नहीं देखती, बल्कि उसे समाज और राष्ट्र के साथ घनिष्ठ रूप से जुड़ा हुआ मानती है, जिससे सामाजिक समरसता और नैतिक अनुशासन को बल मिलता है। दूसरी ओर, पश्चिमी उदारवाद आधुनिक लोकतंत्र की आधारशिला है, जिसने विश्व स्तर पर मानवाधिकार, अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता, विधिक संरक्षण और संस्थागत पारदर्शिता को सुदृढ़ किया है। यह विचारधारा व्यक्ति की स्वतंत्रता और अधिकारों की सुरक्षा को सर्वोच्च प्राथमिकता देती है, जिससे व्यक्तिवाद और स्वायत्तता को बढ़ावा मिलता है। हालांकि, भारतीय सामाजिक संरचना की विविधता, बहुधार्मिकता, बहुभाषीयता और सामूहिकता के संदर्भ में पश्चिमी उदारवाद की सीमाएँ स्पष्ट हो जाती हैं। इसकी व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर अत्यधिक केंद्रित प्रवृत्ति कभी-कभी सामाजिक एकता, सांस्कृतिक मूल्यों और नैतिक जिम्मेदारियों की उपेक्षा कर सकती है, जिससे सामाजिक विघटन और नैतिक पतन की संभावना बढ़ जाती है। इस प्रकार, भारत जैसे बहुआयामी, बहुसांस्कृतिक और बहुधार्मिक देश में केवल एक विचारधारा पर निर्भर रहना व्यावहारिक और प्रभावी नहीं होगा। एकात्म मानववाद और पश्चिमी उदारवाद दोनों के बीच संतुलन और समन्वय की आवश्यकता है। एक ऐसा दृष्टिकोण जो पश्चिमी उदारवाद की लोकतांत्रिक संरचनाओं, नागरिक अधिकारों और विधिक सुरक्षा को अपनाए, साथ ही एकात्म मानववाद के सामाजिक कर्तव्य, सांस्कृतिक आत्मबोध और नैतिक मूल्यों को भी समाहित करे, वह भारत के लिए सटीक और समुचित मार्गदर्शक सिद्ध होगा। इस संतुलित दृष्टिकोण से न केवल भारत के विविध सामाजिक ताने-बाने में सामंजस्य स्थापित होगा, बल्कि देश का आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक विकास भी सतत और टिकाऊ होगा। ऐसे विकास में मानवाधिकारों की रक्षा के साथ-साथ सामाजिक न्याय, सांस्कृतिक संरक्षण और

नैतिक उत्थान को भी प्राथमिकता मिलेगी। अतः यह कहना उचित होगा कि एकात्म मानववाद और पश्चिमी उदारवाद के गुणों का संयोजन ही भारत के लिए एक समृद्ध, न्यायसंगत और सशक्त भविष्य की आधारशिला रख सकता है। यही समन्वित दृष्टि भारत को वैश्विक परिप्रेक्ष्य में भी एक स्थिर, सामंजस्यपूर्ण और प्रेरणादायक राष्ट्र के रूप में स्थापित करेगी।

संदर्भ:

1. उपाध्याय, दीनदयाल, *एकात्म मानव दर्शन*, लखनऊ, 1965, पृ.47.
2. गोविंदाचार्य, के. एन., *एकात्म मानवदर्शन: पुनर्पाठ और पुनर्व्याख्या*, दिल्ली, 2017, पृ.112.
3. परांजपे, मकरंद, *डिबेटिंग द इंडियन वे: दीनदयाल उपाध्याय एंड इंटीग्रल ह्यूमनिज़्म*, नई दिल्ली, 2021, पृ.89.
4. मिश्र, रमेश चंद्र, *इंटीग्रल ह्यूमनिज़्म: अ फिलॉसफी फॉर मॉडर्न इंडिया*, दिल्ली, 2015, पृ.102.
5. दुग्गल, रवि, *पश्चिमी उदारवाद का संकट और विकल्पों की खोज*, मुंबई, 2013, पृ.34.
6. कुमार, अनुराग, *भारतीय राजनीतिक चिंतन और दीनदयाल उपाध्याय*, नई दिल्ली, 2018, पृ.76.
7. नंदी, आशीष, *घनिष्ठ शत्रु: उपनिवेशवाद के अधीन आत्मबोध का ह्रास और पुनरुद्धार*, नई दिल्ली, 1983, पृ.51.
8. सेन, अमर्त्य, *विकास: एक स्वतंत्रता के रूप में*, नई दिल्ली, 1999, पृ.85.
9. उपाध्याय, दीनदयाल, *पूर्वोक्त*, पृ.12.
10. वही, पृ.21.
11. वही, पृ.36.
12. वही, पृ.47.
13. वही, पृ.58.
14. वही, पृ.64.
15. उपाध्याय, दीनदयाल, *दीनदयाल उपाध्याय सम्पूर्ण वाङ्मय (खंड-4)*, नई दिल्ली, पृ.25.
16. शर्मा, महेश चंद्र (संपा.), *एकात्म मानववाद: पं. दीनदयाल उपाध्याय*, भारत सरकार, नई दिल्ली, 2017, पृ.37.
17. कुमार, रमेश, *दीनदयाल उपाध्याय: विचार दर्शन*, नई दिल्ली, 2015, पृ.51.
18. के. एस. भारती, *पंडित दीनदयाल उपाध्याय का राजनैतिक चिंतन*, नई दिल्ली, 1998, पृ.102.
19. गांधी, महात्मा, *हिंद स्वराज*, अहमदाबाद, 1909 (पुनः प्रकाशन 2006), पृ.59.
20. ब्रायन आर. नेल्सन, *पश्चिमी राजनैतिक चिंतन*, न्यू यॉर्क, 2004, पृ.145-147.
21. राय, हिमांशु, *भारतीय राजनैतिक चिंतन: विषय और चिंतक*, नई दिल्ली, 2019, पृ.223.
22. नेहरू, जवाहरलाल, *भारत एक खोज*, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली, 1946, पृ.292-295.
23. सेन, अमर्त्य, *न्याय का विचार*, कैम्ब्रिज, 2009, पृ.78-80.
24. टॉनी, आर. एच., *धर्म और पूँजीवाद का उदय*, लंदन, 1926, पृ.119.
25. दुग्गल, रवि, *पूर्वोक्त*, पृ.34.
26. वही, पृ.34.
27. उपाध्याय, दीनदयाल, *पूर्वोक्त*, पृ.21.
28. कुमार, अशोक, *भारतीय समाज में विचारधाराओं का संघर्ष*, इलाहाबाद, 2010, पृ.90.
29. पाण्डेय, रमेश, *समरस समाज और भारतीय संस्कृति*, वाराणसी, 2005, पृ.103.
30. शर्मा, राकेश, *राजनीतिक दर्शन: भारतीय और पश्चिमी परंपराएँ*, दिल्ली, 2012, पृ.143.
31. त्रिपाठी, दिनेश, *स्वदेशी और समग्र विकास की अवधारणा*, भोपाल, 2016, पृ.69.
32. जोशी, अरुण, *समकालीन भारत में सांस्कृतिक वैचारिक संघर्ष*, पुणे, 2018, पृ.56-58.
33. दुग्गल, रवि, *पूर्वोक्त*, पृ. 34.
34. उपाध्याय, दीनदयाल, *पूर्वोक्त*, पृ.68.
35. शर्मा, राजेश, *भारतीय सामाजिक दर्शन और आधुनिकता*, वाराणसी, 2015, पृ.117.
36. मेहरा, अरुण, *नैतिकता, अधिकार और कर्तव्य: एक तुलनात्मक अध्ययन*, जयपुर, 2018, पृ.95.